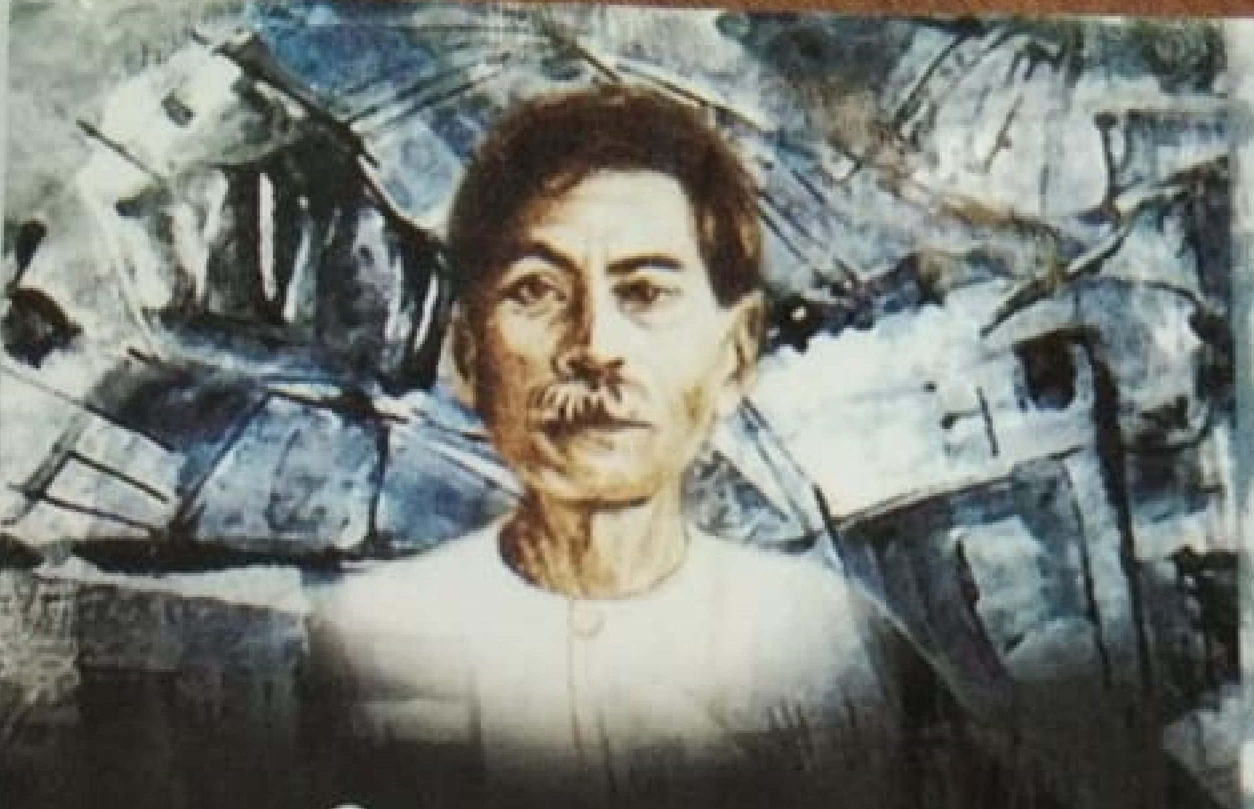

प्रेमचन्द और दलित-संदर्भ

दीपक प्रकाश त्यागी

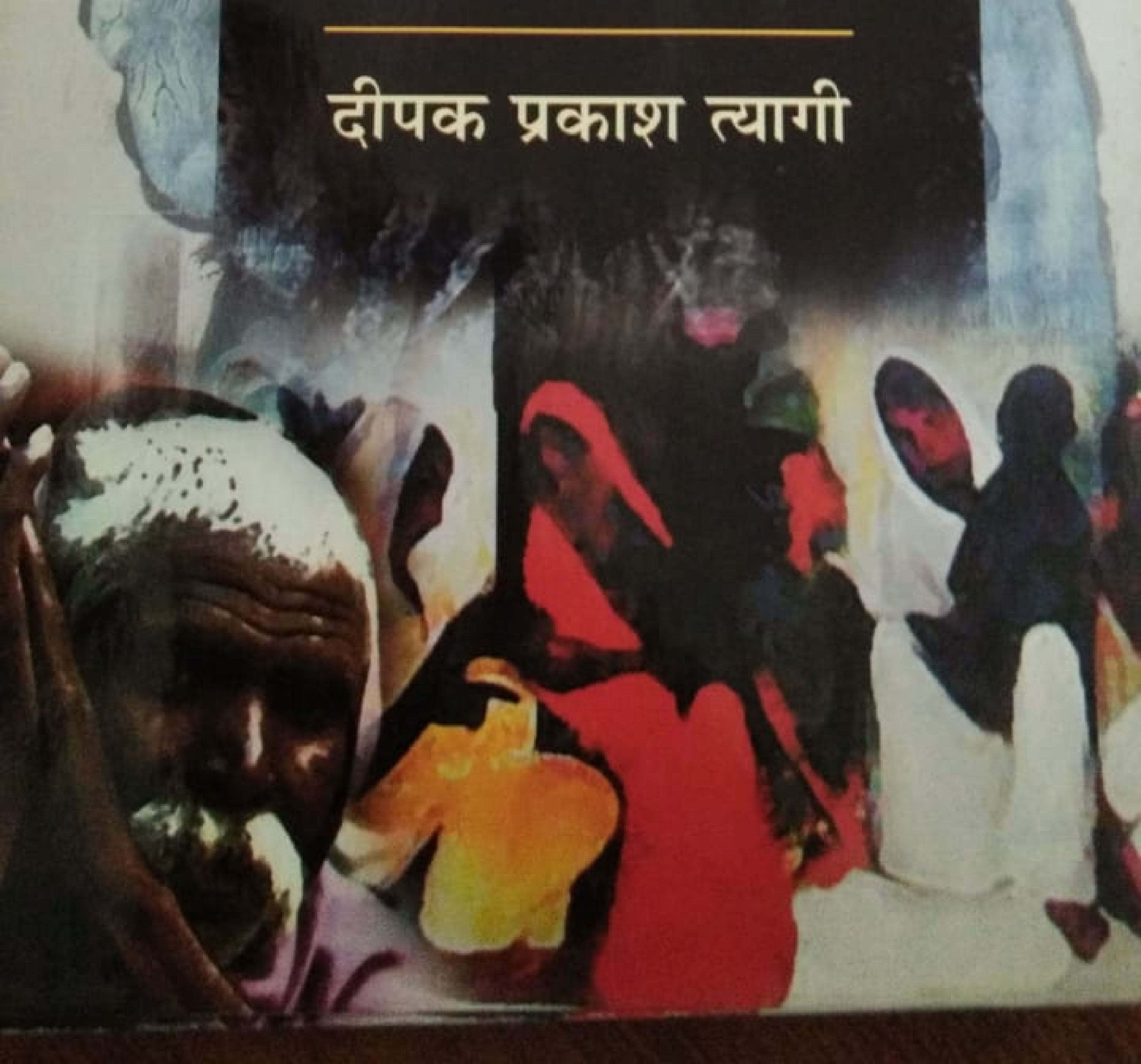

हिन्दी ही नहीं सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में विचार और रचना के इतिहास की एक लम्बी परम्परा में अनेक परिवर्तन घटित होते रहे हैं जिन्होंने साहित्य की मुख्यधारा को कभी भीतर से कभी बाहर से प्रभावित किया है। भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन की तथाकथित मुख्यधारा को हाशिए पर कर दिए गए, अपमान, अछूत, की जिन्दगी व्यतीत कर रहे लोगों ने अपनी भाषा में, अपने संघर्षों के साथ जिस मार्मिकता के साथ ध्वस्त किया है, उससे साहित्य में नयी चेतना जाग्रत हुई है और रचना के पाठ की नयी प्रविधि भी विकसित हुई है, जिसे 'दलित साहित्य' के नाम से जाना जाता है और इसके पीछे अम्बेडकरवाद का दर्शन है। यद्यपि कि इस साहित्य के बीज हिन्दी में सिद्धो-नाथों से लेकर भक्तिकाल में कबीर, रैदास से लेकर आधुनिक काल में हीरा डोम, अछूतानन्द, सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, प्रेमचन्द, राहुल सांकृत्यायन, अमृतलाल नागर आदि की कृतियों-विचारों में दिखाई दे रहे थे, किन्तु आधुनिक दलित साहित्य का प्रारम्भ मराठी भाषा में रचित साहित्य से है, जिसकी प्रेरणा की पृष्ठभूमि में संतकवि नामदेव, चोखामिला, ज्ञानेश्वर, समर्थ रामदास, तुकाराम, एकनाथ आदि हैं। ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई फुले और डॉ. अम्बेडकर द्वारा चलाए गए सशक्त सामाजिक आन्दोलन ने दलित साहित्य को तेवर एवं प्रतिरोध का स्वर दिया। सर्वप्रथम ज्योतिबा फुले एवं सावित्री-बाई फुले ने दलितों के उत्थान और सामाजिक सम्मान के लिए जागृति की ऐसी लहर पैदा की, जिसे डॉ. अम्बेडकर ने सशक्त सामाजिक-राजनैतिक-सांस्कृतिक आन्दोलन का रूप दे दिया। इस आन्दोलन की अभिव्यक्ति के रूप में भारतीय साहित्य में जबर्दस्त ढंग से दलित साहित्य एक आन्दोलन के रूप में अस्तित्व में आया, जिसने विचार के क्षेत्र में हलचल पैदा कर दी। वर्गवादियों की चूलें हिल गयीं और अश्पृश्यता पर आधारित सभ्यता के पाँव उखड़ने शुरू हो गए। पहले जो अछूत सिर्फ शिकायत कर रहा था एवं बिनती कर रहा था—

हमनी के राति दिन दुखवा भोगत बानी
हमनी के सहेबे से मिनती सुनाइबि ... ।

और यह विनती निरन्तर उपेक्षित, तिरस्कृत होती रही, तो वह संघर्ष एवं प्रतिरोध की भूमिका में आ गया, जो स्वाभाविक एवं जरूरी भी था। दलित स्वयं कहा उठा—

Scanned with CamScanner

बस्स! बहुत हो चुका!
स्वीकार्य नहीं मुझे
जाना, मृत्यु के बाद
तुम्हारे स्वर्ग में
वहाँ भी तुम
पहचानोगे मुझे
मेरी जाति से ही!

क्योंकि सदियों का संताप असह्य हो गया था इसलिए पुराने पाठ अप्रासंगिक होते जा रहे हैं। ऐसे में दलित पाठ भी एक जरूरी पाठ की तरह उपस्थित है, किन्तु मराठी में तो नहीं, किन्तु हिन्दी में स्वीकार्यता के लिए एक लम्बी जंग एवं जिरह हो रही है। जिरह इस बात पर भी है कि दलित साहित्य किसे कहें? ऐसे में मैनेजर पाण्डेय का एक साक्षात्कार याद आ रहा है, जिसमें ज्योतिवा फुले का यह कथन है—गुलामी की यातना को जो सह सकता है, वही जानता है और जो जानता है, वही पूरा सच कह सकता है। सचमुच राख ही जानती है, जलने का अनुभव, कोई और नहीं। ओम प्रकाश बाल्मीकि ने लिखा है कि 'दलित साहित्य वही साहित्य है, जिसमें दलितों की पीड़ा की अभिव्यक्ति हो और जिसकी अन्तर्उर्जा में दलित चेतना का समावेश हो। दलित चेतना का केन्द्रबिन्दु हजारों साल का उत्पीड़न, शोषण है और उससे मुक्त होने की कोशिश ही दलित चेतना है। दलित चेतना का सरोकार डॉ. अम्बेडकर के जीवन संघर्ष से जुड़ता है। उनका सूत्र वाक्य 'शिक्षा' 'संगठन' और 'संघर्ष' दलित साहित्य का भी ध्येय वाक्य बन गया है। इसीलिए हम यूं भी कह सकते हैं कि जिस साहित्य में अम्बेडकर विचार हो वही दलित साहित्य है। अम्बेडकर के विचार से विहीन साहित्य, भले ही वह लिखा हो किसी दलित ने वह हरिजन साहित्य हो सकता है, लेकिन दलित साहित्य नहीं हो सकता। 'यदि कोई गैर दलित इस विचार के तहत अपनी रचनाधर्मिता की अभिव्यक्ति करता है तो उसे भी हम दलित साहित्य कह सकते हैं। लेकिन गैर दलित को जातीय भावना से मुक्त होना चाहिए।' ऐसे में दलित साहित्य वर्णव्यवस्था का प्रतिकार करने वाला साहित्य है। जयप्रकाश कर्दम ने लिखा है कि 'दलित लेखकों द्वारा लिखित दलित चेतनोन्मुख साहित्य ही दलित साहित्य है। गैर दलित इस परिधि में नहीं आ सकता', किन्तु कर्दम जी 'दलित' शब्द की व्याप्ति को अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के अलावा अन्य पिछड़े वर्ग के अन्तर्गत आने वाली कामगार जातियों को भी शामिल करते हैं। रमणिका गुप्त के अनुसार, 'मेरी राय में दलित ही दलित साहित्य लिख सकता है क्योंकि उसने यथार्थ को भोगा है। गैर दलित केवल संवेदना को लिख सकता है। उसका आधार सहानुभूति होती है। लेकिन दलित द्वारा कुछ भी लिखा हुआ दलित साहित्य नहीं कहलाता क्योंकि दलित

Scanned with CamScanner

साहित्य डॉ. अम्बेडकर के नकार एवं स्वीकार पर आधारित है।' ऐसे में दलित जीवन की प्रामाणिक अभिव्यक्ति दलित ही कर सकता है, किन्तु यह सवाल बार बार उठता है कि दलित साहित्य क्या है? केवल दलितों द्वारा लिखित साहित्य को साहित्य माना जाएगा अथवा गैरदलित लेखकों में निराला, प्रेमचन्द, राहुल सांकृत्यायन, नागार्जुन, अमृतलाल नागर, शैलेष मटियानी, मन्नू भण्डारी, गिरिराज किशोर आदि द्वारा लिखित साहित्य भी दलित साहित्य माना जाएगा? इस मुद्दे पर दो तरह की राय दिखाई देती है।

एक. दलित साहित्य और चिन्तन से जुड़े अधिकांश दलित एवं गैरदलित विचारकों रचनाकारों ओम प्रकाश बाल्मीकि, धर्मवीर, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, शोराज सिंह बेचैन, तुलसीराम, राजेन्द्र यादव, मैनेजर पाण्डेय, चमनलाल, प्रेम कुमार मणि, वीरभारत तलवार, भवदेव पाण्डेय, देवेन्द्र चौबे आदि का मानना है कि वास्तविक दलित साहित्य वही है, जो दलितों द्वारा लिखा गया है।

दो. राजकुमार सैनी, रजनी तिलक जैसे लेखक दलित साहित्य में गैर दलित लेखकों के दलित लेखन को भी मानते हैं, किन्तु गैर दलित लेखकों के दलित विषयक लेखन को अधिकांश दलित चिन्तक 'दलित सहानुभूति का साहित्य' अथवा दलित चेतना का साहित्य कहते हैं क्योंकि संवेदना, विचार, पाठ एवं समाजदर्शन को लेकर गैर दलितों का दृष्टिकोण बिल्कुल भिन्न है। ओमप्रकाश बाल्मीकि का विचार है, 'दलित यदि गैर दलित के पास आता है तो वह एक गुलाम की तरह आता है। गैर-दलित जब दलित के पास जाता है तो मालिक की तरह। उसका जातीय अहं, श्रेष्ठता-भाव उसके साथ होता है। उसके संस्कार उसके साथ होते हैं। सबकी बहुलता में वह दलित जीवन को नहीं देख पाता।'[15] यह सही है कि जाति एवं वर्ण का संस्कार जल्दी नहीं छूटता। अमृतलाल नागर अपने उपन्यास 'नाच्यौ बहुत गोपाल' में दलित जीवन को अपनी संवेदना का सहचर बनाते हैं, किन्तु मेहतरनी निर्गुणियाँ जब संस्कृत के श्लोक का पाठ करती हैं तो नागर जी के वर्णवादी संस्कार झलक मारने लगते हैं। इसी तरह गिरिराज किशोर अपने उपन्यास 'परिशिष्ट' के दलित पात्र अनुकूल को नायकत्व तो देते हैं, किन्तु उसे गांधीवादी फ्रेम में कैद करके उसे वर्णव्यवस्थावादी सिद्ध करना चाहते हैं।

स्पष्ट है कि वर्ण एवं जाति से मुक्ति का जो तेवर दलित लेखकों के पास है, वह गैर दलितों के यहाँ नहीं है, किन्तु प्रेमचन्द इसके विरल उदाहरण हैं। मैनेजर पाण्डेय ने एक साक्षात्कार में कहा है कि, 'हिन्दी में दलितों के जीवन पर उपन्यास और कविता लिखने वाले गैर-दलितों ने अपने वर्ग और वर्ण के संस्कारों से मुक्त होकर ही दलित जीवन पर लिखा है, फिर भी, उनके लेखन में अनजाने ही सही, सवर्ण

Scanned with CamScanner

संस्कार की छाया आ गई है।' यह छाया नागार्जुन की 'हरिजन गाथा' में है, जहाँ वे जिन्दा जलाए गये हरिजनों को मनु पुत्र कहते हैं, जबकि मनुस्मृति अस्पृश्यता का सबसे बड़ा महाकाव्य है। जो मनुस्मृति यह कहता है–

धर्मोपदेश दर्पेण विप्राणामस्य कुर्वतः
तप्तमासेचयेतैलं वक्त्रे श्रोत्रे च पार्थिवः (8:272)

अर्थात् यदि घमंड से शूद्र विप्रों को धर्मोपदेश करे तो राजा उसके मुख कानों में जलता तेल छिड़कावे। जाहिर ऐसे मनु का पुत्र होना कितना त्रासद होगा। दलित साहित्य की पहली प्राथमिकता वर्णव्यवस्था का विरोध, जाति-प्रथा का उच्छेदन ही है। दलित साहित्य प्रत्येक प्रकार के वर्चस्ववाद का विरोधी है। आर्थिक क्षेत्र में यह पूँजीवाद का विरोध करता है तो सामंतवाद, ब्राह्मणवाद को मनुष्य विरोधी मानता है। तुलसीराम जैसे लेखक गैर दलितों की भी भागीदारी को महत्त्व देते हैं। उनका विचार है कि 'आत्मकथा को छोड़कर कोई भी लेखक (गैर दलित) अन्य साहित्यिक विधाओं में दलित समाज का चित्रण कर सकता है और उसे दलित साहित्य भी माना जाना चाहिए, बशर्ते उसमें वर्ण के प्रतिरोध की चेतना हो।'[19] पर दलित लेखन से जुड़े अधिकांश रचनाकार इस मान्यता का विरोध करते हैं। तुलसीराम जी ने लिखा है, 'गैर दलितों द्वारा लिखा गया दलित साहित्य किसी अभिनेता द्वारा मंच पर सफलतापूर्वक शेर की आवाज निकालने जैसा है, जबकि दलित साहित्यकार स्वयं शेर भी है और उसकी आवाज भी। इस कड़ी में भारत के बौद्ध विद्वान एक मात्र अपवाद हैं। दलित साहित्य को दो भागों में बांटा जा सकता है। एक गैर दलितों द्वारा लिखा गया तथा दूसरा स्वयं दलितों द्वारा। इन दोनों का आधार जातिगत शोषण तो है किन्तु अलग-अलग समझदारी के साथ। गैर दलित साहित्यकार अपनी रचना में दलित शोषण को उजागर तो करता है, किन्तु उस शोषण की जड़ वर्णव्यवस्था के खिलाफ एक शब्द भी नहीं कहता, जबकि वास्तविक दलित साहित्य का मूलभूत आधार ही वर्ण व्यवस्था को नेस्तनाबूद करना है। इसी सच्चाई के चलते गैरदलित साहित्यकार चाहे जितनी भी अच्छी कविता, कहानी क्यों न लिख लें, वह दलित साहित्यकार से हमेशा भिन्न ही रहेगा। गैर दलित साहित्यकार जहाँ एक तरफ छुआछूत, दलित हत्या, बलात्कार तथा गरीबी आदि का रोचक वर्णन करता है वहीं दूसरी ओर वह वेदों-पुराणों, महाभारत, गीता, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, याज्ञवल्क्य स्मृति, मनुस्मृति, नारद स्मृति, रामायण, रामचरित मानस, कुमारिल भट्ट के श्लोक वार्तिक, तेजवार्तिक तथा शंकराचार्य के ब्रह्मसूत्र भाष्य आदि वर्ण-व्यवस्थास्थापक ग्रन्थों को अभेद्य देवी मानकर उनकी पूजा करने से भी बाज नहीं आता।'[20] इसीलिए बाबूराव बगूल 'दलित' विश्लेषण को 'सम्यक क्रान्ति का नाम' मानते हैं। इनका कथन है कि 'दलित साहित्य वह लेखन है, जो वर्ण व्यवस्था के विरोध में और उसके विपरीत मूल्यों के लिए

Scanned with CamScanner

संघर्षरत मनुष्य से प्रतिबद्ध है। वर्ण-व्यवस्था अर्थात् द्वेष, शत्रुता, मत्सर, तिरस्कार की युद्ध भावना। इसके विपरीत मूल्य अर्थात् प्रेम बन्धुत्व, समता, भ्रातृभावपूर्ण शान्ति और समृद्धि।'[21] दलित साहित्य की मूल चिन्ता है--मनुवाद का ध्वंस करते हुए अस्पृश्यता और असमानता का अन्त करना। इसीलिए दलित साहित्य मार्क्सवाद को भी अधूरा एवं अपर्याप्त जीवन दर्शन मानता है क्योंकि मार्क्सवाद में वर्ग चिन्तन तो है, किन्तु वर्ण चिन्तन का अभाव है, उसकी उपेक्षा है। इसीलिए ओमप्रकाश वाल्मीकि मार्क्सवादी विचारधारा को प्रश्नांकित करते हैं, 'इस आन्दोलन ने जातिभेद को अनदेखा ही नहीं किया, बल्कि अपने बीच किसी दलित नेतृत्व को उभरने भी नहीं दिया।''[22] तुलसीराम जी मार्क्सवादी चिन्तन में केवल राहुल जी को ही उनके बौद्ध होने के कारण दलित विचारधारा के अन्तर्गत समाहित करते हैं, शेष मार्क्सवादियों को अस्वीकार कर देते हैं। उनका कथन है, 'ऐसे लेखकों की एक विवशता यह थी कि वे कार्ल मार्क्स तथा एंगेल्स द्वारा 1847 में लिखित 'कम्युनिस्ट मैनिफैस्टो' में वर्णित सिर्फ दो वर्गों में विभक्त इस मानव समाज को पूंजीपति वर्ग तथा सर्वहारा वर्ग के रूप में ही देखते थे। अतः वे दलित शोषण को सर्वहारा शोषण का पर्याय मानते थे। यह मान्यता आज भी कायम है, इसलिए अत्यन्त दोषपूर्ण भी है, क्योंकि वे दलितों को मात्र सर्वहारा मानकर जातीयता तथा छुआछूत जैसी जघन्य व्यवस्था के अस्तित्व को जाने या अनजाने इनकार करते हैं या स्वीकार करते हैं, तो बहुत सतही ढंग से।'[23]

समग्रतः दलित साहित्य की प्रकृति एवं प्रतिमान है--

- दलित लेखक स्थापित परम्परा को अस्वीकार करता है और एक ऐसी परम्परा को स्वीकार करता है जो बुद्ध, कबीर, फुले, अम्बेडकर, श्रीनारायण गुरु, पेरियार, अछूतानंद और राहुल सांकृत्यायन की परम्परा है।
- दलित साहित्य में 'नकार' और 'विद्रोह' की प्रवृत्ति है, जो दलितों की वेदना से पैदा हुई है। यह वेदना यद्यपि की वैयक्तिक है, किन्तु इसका स्वर सामूहिक है, इसीलिए नकार और विद्रोह-संघर्ष सामाजिक एवं सामूहिक है। 'जिस स्थापित विषम व्यवस्था ने दलितों का शोषण किया है, उसी व्यवस्था के प्रति यह 'नकार' और 'विद्रोह' है। इसका स्वर दुधारा है। विषम व्यवस्था को नकारते हुए समता और स्वतंत्रता, न्याय और बंधुत्व की माँग करता है।'[24]
- यह अस्वीकार निरंकुश, त्रासद वेदना के गर्भ से पैदा हुआ है, इसलिए 'इसका स्वरूप आक्रामक, अशिष्ट और बागी प्रवृत्ति का है।'[25]
- दलित साहित्य में व्यक्त अनुभव संसार अभी तक साहित्य में व्यक्त नहीं हुआ है, जिसे दलित लेखकों ने अपने स्वानुभूति के आधार पर व्यक्त किया है, किन्तु वह निजी होते हुए भी पूरी दलित जाति का है। 'उसके लेखन में हमेशा एक भूमिका रहती है कि इसके विरुद्ध विद्रोह करना है, यह नकारना है अथवा

Scanned with CamScanner

इसका निर्माण करना है। पहले से निर्धारित विश्वास से दलित साहित्य का
लेखक लिखता इसलिए उसका लेखन उद्देश्यपूर्ण है।'[26]
दलित लेखक सामाजिक जिम्मेदारी एवं सामूहिक चरित्र की चेतना से लिखता
- है, इसलिए 'उसके लेखन में ऐक्टिविस्ट का आवेश एवं निष्ठा व्यक्त होती
है।'[27] उसका लेखन एक आन्दोलन है जिसकी पक्षधरता दलितों के प्रति है,
अछूतों के प्रति है। 'दलित लेखक की अभिव्यक्ति पर उसके लगाव का
प्रभाव होता है। दलित लेखक को कार्यकर्त्ता और कलाकार दोनों की सीमा
रेखा का ज्ञान रखना पड़ता है। लेखक का कृतित्व सामाजिक जीवन का हिस्सा
है। इसलिए परिवर्तनकारी लेखक सामाजिक दायित्व को टाल नहीं सकता,
किन्तु सृजन पर इस जिम्मेदारी का अनिष्ट प्रभाव न पड़े, यह भी एक
महत्त्वपूर्ण दायित्व है।'[28] किन्तु, फिर भी इस वेदना के लिए संयम एवं
कलात्मकता की मांग निरर्थक है। हजारों वर्षों से दबी वेदना का प्रस्फुटन बाँध
के टूटने की तरह है। इसलिए अभिव्यक्ति विस्फोटक है।

- दलित लेखकों ने अपनी वेदना, अपने प्रश्न, अपनी चिन्ताओं को अपनी भाषा में पहलीबार प्रस्तुत किया है, इसलिए इनके साहित्य प्रचारात्मक हैं, तटस्थता से मुक्त हैं। इसलिए उसके लेखन में प्रतिक्रिया भी है, जो आक्रोश से भरी हुई है, किन्तु इसका कारण शोषक समाज है। इस आक्रोश की परिणति दलित की सृजनात्मकता है।
- दलित साहित्य में एकस्वरता भी दिखाई देती है, किन्तु शरण कुमार लिम्बाले की दृष्टि में, 'इस एकस्वरता का कारण इस साहित्य का स्वरूप एकस्वरीय होना है। अछूतों के छुआछूत के कारण होने वाले अनुभव एक समान है। गाँव का नाम अलग होगा, पर दलितों पर अत्याचार का स्वरूप समान होगा।'[29] किन्तु आत्मकथाओं में यह एकस्वरसता नहीं है। इधर कविताओं-कहानियों में भी भाव की दुनिया विस्तृत हुई है।
- दलित साहित्य का जीवन दर्शन भी बिल्कुल भिन्न है इसीलिए यहाँ यथार्थ भी अलग है अतः भाषा भी बिल्कुल अलग है। शरण कुमार लिम्बाले का कथन है कि 'यह भाषा गंवार और असभ्य है। यह भाषा दलितों की बोली है। यह शिष्ट संकेतों और व्याकरण से विहीन भाषा है।'[30]
- दलित साहित्य वेद-पुराण, महाभारत, गीता, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, नारद स्मृति, रामायण, कुमारिल भट्ट के श्लोक वार्तिक, ब्रह्मसूत्र आदि वर्णव्यवस्था के संस्थापक ग्रन्थों के प्रति ध्वंस का भाव रखता है। शरण कुमार लिम्बाले लिखते हैं कि 'शंबूक का बध करने वाला राम हमारा आदर्श नहीं हो सकता, जिस गीता में चातुर्वण्य का समर्थन है, ऐसा महाभारत

Scanned with CamScanner

हमें वंदनीय नहीं लगता।'[31] इसीलिए दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र परम्परागत सौन्दर्यशास्त्र के समक्ष एक चुनौती की तरह है। मोहनदास नैमिशराय जब शोषण के मूलाधार-ईश्वर एवं उससे जुड़ी संस्थाओं पर चोट करते हैं तो दलित साहित्य का नया सौन्दर्यशास्त्र पैदा होता है–

ईश्वर की मौत
उस दिन होती है,
जब बनता है कोई मन्दिर या मठ
जहाँ बैठता है कोई,
ठग,
लुटेरा,
गुमराह करने वाला।
ईश्वर की मौत,
उस दिन होती है
जब किसी महिला को बनना पड़ता है,
देवदासी,
जानना पड़ता है वेश्यालय।

- दलित साहित्य दलितों ने भी लिखा है और गैर दलितों ने भी, किन्तु दलित सौन्दर्यशास्त्र के प्रतिमान की कसौटी पर दलितों द्वारा लिखा साहित्य ही खरा उतरता है। दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र शिष्ट एवं परिस्कृत भाषा के स्थान पर अलंकरण से मुक्त सीधा-सपाट व अनगढ़ता से मुक्त भाषा पर बल देता है। दलित चिन्तन के लिए न तो 'रमणीय अर्थ' और न ही 'वाक्यं रसात्मक' न ही सत्वोद्रेक साहित्य है, बल्कि दलित विचारक आई.ए. रिचर्ड्स की मान्यता–'भावात्मक संतुष्टि का नाम सौन्दर्य है' को अपना प्रतिमान मानता है और कथ्य को विशेष महत्त्व देता है। दलित चिन्तक सी.बी. भारती का कथन है, 'साहित्य के माध्यम से भोगी हुई व्यवस्थाजन्य वितृष्णा को उभार देना, सुपुप्त संवेदनाओं में आग भर देना, अंधविश्वासों व पाखंडों को समूल जड़ से उखाड़ फेकना, दलितों-शोषितों के मौन को वाणी देना, कलुषित परम्पराओं को तार-तार कर जातिपरक असमतामूलक गंदी बजबजाती सामाजिक काई को खंगाल देना ही दलित साहित्य की रचनाधर्मिता, दलित साहित्य सौन्दर्य का उत्कर्ष व उसके सौन्दर्यशास्त्र का प्रतिपाद्य है।'[32]

अस्मिता की तलाश, जातिहीन वर्गहीन समाज की स्थापना, अमानवीय त्रासदी से मुक्ति की छटपटाहट, यातना त्रासदी, छूआछूत से उपजे गरम प्रश्न एवं हस्तक्षेप की प्रवृत्ति दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र है। यह सौन्दर्यशास्त्र भीमराव अम्बेडकर के

Scanned with CamScanner

दर्शन एवं संघर्ष को मूल उत्स मानता है। दलित सौन्दर्यशास्त्र परम्परागत मिथकों को, पुनर्जन्मवाद, कर्मफलवाद को निरर्थक मानता है। वह गौतम बुद्ध के मूल मंत्र 'आत्मदीपो भव' में विश्वास करता है। दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र साहित्यिकता को बहुत महत्त्वपूर्ण नहीं मानता, बल्कि दलित पीड़ा की सफल प्रामाणिक, जीवन्त अभिव्यक्ति को प्रतिमान मानता है। वह उधार की परम्परागत सौन्दर्य दृष्टि को नकार कर स्वयं द्वारा खोजी हुई चेतना को महत्त्व देता है भले ही अनगढ़ हो। स्वनिर्मित सौन्दर्यशास्त्र ही दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र का प्रतिमान है। दलित साहित्यकार दलित साहित्य के लिए नया सौन्दर्यशास्त्र ईजाद कर रहे हैं। हिन्दी सौन्दर्यशास्त्र जो संस्कृत सौन्दर्यशास्त्र का ऋणी है उसके सामन्तवादी, ब्राह्मणवादी चरित्र के कारण एवं पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्रीय दृष्टि को पूँजीवादी एवं सामन्तवादी स्वभाव के कारण दलित विचारकों ने अस्वीकार तो किया है, कुछ गैरदलित विचारकों—मैनेजर पाण्डेय, शिवकुमार मिश्र ने भी अपर्याप्त माना है। शिव कुमार मिश्र का कथन है, 'जिस काव्यशास्त्र या साहित्यशास्त्र द्वारा निर्धारित प्रतिमानों से प्राणरस लेकर सदियों—सहस्त्राब्दियों से भारतीय रचनाशीलता विकसित और पल्लवित होती रही है, महान रचनाकारों की विश्वविख्यात रचनाएँ जिसकी कीर्तिपताका फहरा रही हैं, वह काव्यशास्त्र या साहित्यशास्त्र भी अन्ततः उसी कुलीन मानसिकता की देन है, जो हमारे सामाजिक विधान की भी स्रष्टा है। इस काव्यशास्त्र में अभिजनोचित रुचियों, रुझानों, संस्कारों और सौन्दर्यबोध का ही तो वर्चस्व है। उच्च कुलोत्पन्न, धीरोदात्त व्यक्ति ही इनमें नायकत्व का अधिकारी कहा गया है। सौन्दर्य के प्रतिमानों और भावों का गम्भीर्य तथा उज्ज्वलता भी यहाँ अभिजनोंचित रुचियों के आधार पर तय की गई है और देखी गई है।'[33] मस्तराम कपूर भी पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्रीय आकर्षण को हिन्दी सौन्दर्यशास्त्र की सबसे बड़ी कमजोरी मानते हैं। उनका कथन है, 'पश्चिमी साहित्यशास्त्र के सम्पर्क में आने के बाद भी हमने अपनी धारणाओं पर पुनर्विचार नहीं किया, बल्कि उसकी जैसे-तैसे अपने साहित्य के साथ संगति बैठाने की कोशिश की। रामचन्द्र शुक्ल ने यह काम इतनी चतुराई से किया कि पश्चिमी शास्त्र की अवधारणाओं को भारतीय साहित्यशास्त्र की मूल धारणाएँ बना दिया। रस की सिद्धावस्था, साधारणीकरण और कविता का भावयोग आदि शब्द इसे इंगित करते हैं।'[34] इसमें एक बड़ी सच्चाई है कि हिन्दी समीक्षा अभी भी पश्चिम की ओर टकटकी लगाए हुए है और पश्चिम के मोह ने हिन्दी समीक्षा को अपने पैरों पर ठीक से खड़ा होने नहीं दिया। ओमप्रकाश बाल्मीकि की दृष्टि में, 'इसका कारण ब्राह्मणवादी सोच का वर्चस्व, हिन्दी साहित्य की मूल प्रवृत्ति को संस्कृतनिष्ठ बनाने की प्रक्रिया से गुजार रहा है।'[35] किन्तु प्रेमचन्द जैसे विचारकों ने सौन्दर्य के प्रतिमान बदलने की गुहार की थी। उन्होंने कहा था कि 'हमें सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी और हमें निश्चय ही विलासिता के मीनार से उतर

Scanned with CamScanner

कर उस बच्चों वाली काली रूपवती का चित्र खींचना होगा जो बच्चे को खेत की मेड़ पर सुलाकर पसीना बहा रही है।' किन्तु प्रेमचन्द के इस स्वर को प्रगतिशील रचनात्मक साहित्य में जगह तो मिली, किन्तु समीक्षा में यह स्वर बहुत धीमा रहा। इसीलिए जब दलित-साहित्य के मूल्यांकन की चर्चा चली तो हिन्दी का परम्परागत समीक्षाशास्त्र अपर्याप्त लगने लगा और कुछ हद तक निरर्थक भी। डॉ. म0ना0 वानखेड़े का यह कहना युक्तिसंगत ही है कि 'जिस भारतीय सौन्दर्यशास्त्र में दलित साहित्य की आशयनिष्ठ समीक्षा करने की क्षमता न हो, उस सौन्दर्यशास्त्र को ठुकरा देने में कोई हानि नहीं है।' क्योंकि दलित साहित्य कथ्य या आशय को महत्त्व देता है। जीवनानुभव इसे गम्भीरता एवं प्रामाणिकता देते हैं और यह सामूहिक मन की अभिव्यक्ति है। कलात्मकता का तत्त्व यहाँ दूसरे दर्जे पर हैं। इसीलिए डॉ. मैनेजर पाण्डेय जैसे विचारक दलित साहित्य के मूल्यांकन के लिए नया सौन्दर्यशास्त्र विकसित करने पर बल देते हैं। उनका कहना है कि, 'कोई भी सौन्दर्यशास्त्र एक दिन में नहीं बनता। प्रतिरोध और विकल्प का सौन्दर्यशास्त्र तो और भी नहीं। वैसे तो हिन्दी में कोई विकसित सौन्दर्यशास्त्र नहीं है, लेकिन जो है उसके पीछे एक ओर संस्कृत के काव्यशास्त्र की लम्बी परम्परा है तो दूसरी ओर पश्चिम के सौन्दर्यशास्त्र का प्रभाव। स्वयं पश्चिम में सौन्दर्यशास्त्र का विकास कई सदियों में हुआ। जो लोग कहते हैं कि सौन्दर्यशास्त्र का जाति, वर्ग, विचारधारा से क्या लेना-देना, वे या तो बेवकूफ हैं या बदमाश। सौन्दर्यशास्त्र कला की अलौकिक अनुभूति नहीं है वह कलात्मक सौन्दर्य के बोध और मूल्यों का शास्त्र है और बोध की प्रक्रिया तथा मूल्यों के निर्माण में जाति, वर्ग और लिंग से जुड़ी विचारधाराओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है ..... इसीलिए दलित सौन्दर्यशास्त्र का विकास दलित समाज, उसकी चेतना, संस्कृति, विचारधारा पर निर्भर है।'[36]

दलित साहित्य यातना एवं संघर्ष से निकला हुआ है, अतः यातना एवं संघर्ष उसके महत्त्वपूर्ण प्रतिमान हैं। राजेन्द्र यादव इसीलिए मानते हैं कि 'जो नया सौन्दर्यशास्त्र बनेगा, वह संघर्ष से शुरू होगा, उस यातना से शुरू होगा चाहे वह उसका रिआलाइज करने अथवा उस यातना को, उसकी तकलीफ को, उसके भेदक रूप को समझने के रूप में हो और उसके बाद बदलने की मानसिकता के रूप में हो, जिसे हम संघर्ष कह सकते हैं। तीसरा-एक स्वप्न के रूप में होगा, हमें क्या करना है? हमें समानान्तर सौन्दर्यशास्त्र देना है, वैकल्पिक समाज बनाना है, यह सारा संघर्ष साहित्य में भी है और समाज में भी।'[37]

दलित साहित्य का सौन्दर्य उसकी कातरता में नहीं चीख, आक्रोश एवं आक्रामकता में है। यह भविष्य नहीं बल्कि वर्तमान की आकांक्षा से संचालित है। दलित विचारक डॉ. एन0 सिंह दलित साहित्य के सौन्दर्यशास्त्र पर विचार करते हुए लिखते हैं कि,

Scanned with CamScanner

'दलित साहित्य का शब्द सौन्दर्य प्रहार में है, सम्मोहन में नहीं। वह समाज के साहित्य में शताब्दियों से चली आ रही सड़ी-गली परम्पराओं पर कैंची से चोट करना है। वह शोषण और अत्याचार के बीच हताश जीवन जीने वाले दलित को लड़ना सिखाता है, वह सिर पर पत्थर ढोने वाली मजदूर महिला को उसके अधिकारों के विषय में बतलाता है। उसे धर्म की भूल-भुलैया से निकालकर शोषण से मुक्ति का मार्ग दिखाता है। उनके लिए जिस शाब्दिक प्रहार क्षमता की आवश्यकता है, वह उसमें है और यही दनित साहित्य का शिल्प सौन्दर्य है।'[38]

शिल्प का अनिवार्य तत्व भाषा है। दलित साहित्य ने संघर्षों से पैदा हुई नई भाषा की तलाश की है। दलित साहित्य चूँकि यातना की छटपटाहट के गर्भ से निकला है, इसीलिए उसकी काव्य-भाषा साहित्य-भाषा में भी तिलमिला देने वाला आक्रोश है। कँवल भारती का कहना तर्कसंगत है--

यह बताओ
बलात्कार की शिकार
तुम्हारी माँ की भाषा कैसी होगी?
कैसे होंगे
गुलामी की जिन्दगी जीने वाले
तुम्हारे बाप के विचार?
ठाकुर की हवेली में दिल तोड़ती
तुम्हारी बहिन के शब्द
क्या वे सुन्दर होंगे[39]

दलित साहित्य की ऐसी भाषा लोगों को नागवार लगती है, किन्तु त्रासदी से निकली भाषा का सौन्दर्य यहीं हो सकता है। यह नकार और विरोध की भाषा है, यह वैचारिक प्रतिबद्धता की भाषा है जो सहज, सरल, आवेगपूर्ण एवं धारदार है। यह 'मास कल्चर' की भाषा है तो यह सृजन की उर्जा से भरी वह भाषा है जो इतिहास के काले अध्यायों में दफन है। इसीलिए दलित इस अनगढ़ भाषा में जली हुई राख से अपनी अस्मिता तलाश रहा है, भले ही यह लोगों को गाली-गलीज लगे, किन्तु यह साहित्य शिल्प का नया आविष्कार है। ओम प्रकाश वाल्मीकि की यह कविता बहुत कुछ कहती है--

आ, मेरे अज्ञात अनाम पुरखो
तुम्हारे मूक शब्द जल रहे हैं
दहकती राख की तरह!
राख : जो लगातार काँप रही है
रोष से भरी हुई मैं जानना चाहता हूँ

Scanned with CamScanner

तुम्हारे शब्द ....

तुम्हारा भय ....

जो तमाम हवाओं के बीच भी

जल रहे हैं

दीये की तरह युगों-युगों से!'[40]

इतना ही नहीं दलित अपनी इस भाषा के अनुरूप ही बिम्ब, प्रतीक और मिथक भी चुनता है, जो दलित जीवन की त्रासदी का बयान करते हैं, जैसे वृक्ष ही दलित जीवन की त्रासदी का प्रतीक बन जाता है-

अब वृक्ष की कटी-छँटी टहनियाँ

पुनः प्रस्फुटित होने लगी हैं

द्रुत गति से

बीसवीं सदी के उत्तरार्ध में

ओम प्रकाश बाल्मीकि का विचार है, 'दलित कवि का स्वर कटु है, क्योंकि उसने समाज के प्रपंच को हजारों सालों से अपनी त्वचा पर सहा है।'[41] यहाँ बिम्ब भी आक्रोश एवं विद्रोह की अभिव्यक्ति के लिए हैं। मिथक में भी विद्रोह, विक्षोभ की भावनाओं, अस्मिता की तलाश का स्वर दिखाई देता है। इसके लिए उन्होंने कर्ण, एकलव्य, शम्बूक के प्रतीकों की पुनर्व्याख्या की है, तो नये मिथक सृजित भी किए हैं। ओम प्रकाश बाल्मीकि की कविता 'शम्बूक का कटा सिर' मिथकों को नया तेवर देता है—

शम्बूक, तुम्हारा रक्त जमीन के अन्दर

समा गया है,

जो किसी भी दिन

फूटकर बाहर आएगा

ज्वालामुखी बनकर।'[42]

इसमें सच्चाई है कि दलित साहित्य पारम्परिक सौन्दर्यशास्त्र की जगह नये सौन्दर्यशास्त्र की तलाश का भी आन्दोलन है। शिल्प के स्तर पर भी दलित लेखकों ने नयी जमीन, जो इनकी नितान्त अपनी है, तलाश की है। रमणिका गुप्ता का कथन है, 'दलित साहित्य ने नए बिम्ब गढ़े, पौराणिक मिथकों की परिभाषा बदल डाली। नये मिथक बनाए, गौरवान्वित झूठ और आस्था पर चोट की और चमत्कार को तोड़ा। अनुभवों की प्रामाणिकता से दलित साहित्य में नया तेवर उभरा जो सीधे मन को छूता है। विश्वसनीय है। यह वर्तमान साहित्य के लिजलिजेपन और बासीपन तथा एकरूपी, रसवादी प्रणाली से भिन्न है और चमत्कारी कल्पनाओं से बिल्कुल अलग होता है।'[43] दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र प्रचलित सौन्दर्यशास्त्र का विखण्डन करता है।

Scanned with CamScanner

- दलित साहित्य स्वानुभूति के आधार पर रचित साहित्य को ही प्रामणिक मानता है, किन्तु सहानुभूति के आधार पर लिखित उस साहित्य को भी स्वीकार करता है जो बौद्ध साहित्य एवं अम्बेडकर के विचारों को मान्यता देता है। मैनेजर पाण्डेय का विचार है कि, 'सहृदयता, करुणा और सहानुभूति के सहारे गैर दलित लेखक भी दलितों के बारे में अच्छा लिख सकते हैं और लिखा भी है। लेकिन सच्चा दलित साहित्य वही है जो दलितों द्वारा अपने बारे में या सवर्ण समुदाय के बारे में लिखा जाता है, क्योंकि ऐसा साहित्य सहानुभूति से नहीं बल्कि स्वानुभूति से उपजा होता है।'[44] मृदुला गर्ग की भी मान्यता है कि 'गैर-दलित लेखक भले ही दलित पात्रों के बारे में सशक्त, प्रभावशाली और कलात्मक रचनाएँ दें, वे दलित लेखकों की कृतियों से कहीं न कहीं भिन्न होंगी। भाषा, शिल्प, रूपक और मुहावरों के प्रयोग में और कथ्य के निर्वाह में भी।''[45]

संदर्भ :

1. भागो नहीं, दुनिया को बदलो—राहुल सांकृत्यायन, सन्दर्भ दलित जन उभार, पृ. 163
2. दहकते अंगारे, नामदेव ढसाल, पृ. 12
3. सम्पूर्ण गांधी वाङमय, खण्ड 19, पृ. 153
4. वही
5. वही, पृ. 146
6. दहकते अंगारे, नारायण सुर्वे, पृ. 3
7. दहकते अंगारे, शरण कुमार लिबांले, पृ. 50-51
8. ऋग्वेद : पुरुष सूक्त, 10/100
9. सदियों के बहते ज़ख़्म, पृ. 87
10. अस्मितादर्श, सम्पादक—गंगाधर पानतावणे, 1973, पृ. 23
11. अम्बेडकरवादी सौन्दर्यशास्त्र और दलित आदिवासी-जनजातीय विमर्श, पृ. 150
12. अम्बेडकरवादी सौन्दर्यशास्त्र और दलित आदिवासी-जनजातीय विमर्श, पृ. 197
13. इलियनर जिलियट, दलित : न्यू कल्चर कंटेक्स्ट ऑर ऐन ओल्ड वर्ल्ड, कंट्रीब्यूशन टु एशियन स्टडीज, पृ. 77
14. ओम प्रकाश बाल्मीकि से डॉ. शगुफ्ता नियाज़ की बातचीत
15. वही
16. साहित्य और संस्कृति में दलित अस्मिता और पहचान का सवाल, नया पथ, अंक 24-25, जुलाईसितम्बर 97, पृ. 41
17. हीरामन, 1989, पृ. 55
18. आधुनिक साहित्य में दलित विमर्श : देवेन्द्र चौबे, पृ. 54
19. वही, पृ. 54
20. 'दलित प्रसंग' में संकलित तुलसीराम का लेख, पृ. 136
21. दलित साहित्य का समाजशास्त्र, हरिनरायन ठाकुर, पृ. 57

Scanned with CamScanner

22. कल के लिए : दिसम्बर 1998 में प्रकाशित, पृ. 19
23. चिन्तन की परम्परा और दलित साहित्य : श्योराज सिंह बेचैन एवं देवेन्द्र चौबे
24. वही, शरण कुमार लिम्बाले, पृ. 70
25. वही,
26. वही, पृ. 71
27. चिन्तन की परम्परा और दलित साहित्य, शरण कुमार लिम्बाले, पृ. 71
28. वही
29. वही, पृ. 72
30. वही, पृ. 71
31. वही, पृ. 72
32. वही, पृ. 92
33. दलित साहित्य का आन्दोलन और हिन्दी क्षेत्र, नया पथ, अंक 24-25, 1997, पृ. 95
34. दलित साहित्य : दिशा, दृष्टि और विचार, शिखर की ओर, सं. डॉ. एन० सिंह, 1997, पृ. 345
35. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ. 46
36. दलित चेतना, सोच–सं. रमणिका गुप्ता, 1998, पृ. X
37. युद्धरत आम आदमी, सं. रमणिका गुप्ता, अंक 41, 1998, पृ. 126
38. दलित प्रवाह और साहित्य तटबन्ध, शिखर की ओर संपादित, 1997, पृ. 353
39. तब तुम्हारी निष्ठा क्या होती, पृ. 53
40. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, बस्स बहुत हो चुका, पृ. 83-84
41. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ. 85
42. सदियों का संताप, पृ. 13
43. खरी-खरी बात, सम्पादकीय, युद्धरत आम आदमी, अंक 41-42, पृ. ८८
44. चिन्तन की परम्परा और दलित साहित्य, पृ. 97
45. दलित साहित्य : ऐतिहासिक तर्क और आज की माँग, कथाक्रम, दलित विशेषांक, नवम्बर 2000, पृ. 125

Scanned with CamScanner